SKU JOURNAL OF LEX VIBRENT
(NATIONAL PEER REVIEWED E-RESEARCH JOURNAL)
April – June 2025
E-ISSN 3048-7323
Vol-2
Issue-2

"मध्यप्रदेश मे पुलिस सुधार बनाम हिरासत में हिंसा: नीतिगत विरोधाभास और सुधार की आवश्यकता"

उर्मिला अहिरवार
शोधार्थी
रतन सिंह तोमर
सहायक प्राध्यापक, मार्गदर्शक
पंडित मोतीलाल नेहरू स्नात्कोत्तर विधि महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

सारांश

हिरासत में हिंसा केवल एक कानूनी या प्रशासनिक चूक नहीं है, यह एक ऐसा अमानवीय व्यवहार है जो हमारे लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों–स्वतंत्रता, समानता और मानव गरिमा–को चुनौती देता है। जब वही व्यवस्था, जिसे नागरिकों की सुरक्षा के लिए बनाया गया है, किसी व्यक्ति के साथ क्रूरता और अन्याय का माध्यम बन जाए, तब सवाल सिर्फ व्यवस्था पर नहीं, हमारी संवेदनाओं पर भी उठते हैं। मध्यप्रदेश जैसे राज्य में, जहाँ कानून व्यवस्था को लेकर कई व्यावहारिक चुनौतियाँ हैं, पुलिस सुधारों की ज़रूरत को बहुत पहले ही महसूस कर लिया गया था। सरकारों ने कई बार पुलिस सुधार लागू करने की बात कही, रिपोर्टें बनीं, योजनाएँ बनीं, लेकिन जमीन पर स्थिति आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। पुलिस थानों में हो रही हिरासत में हिंसा की घटनाएँ यह साफ़ संकेत देती हैं कि सुधारों की बातें सिर्फ कागज़ों में सजी हैं, हकीकत में नहीं।

यह शोध-पत्र इसी विरोधाभास को समझने और उजागर करने की कोशिश करता है–एक तरफ सुधार की नीतियाँ हैं, तो दूसरी तरफ वही पुलिस व्यवस्था, जो कई बार निर्दोष लोगों के मानवाधिकारों को कुचल देती है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC), राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) और कई अदालतों के फैसलों का विश्लेषण यह दर्शाता है कि हिरासत में हो रही ज्यादतियों की न तो समय पर जांच हो पाती है, न दोषियों को सज़ा मिलती है, और न ही पीड़ितों को न्याय।

प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ (2006) जैसे ऐतिहासिक फैसले और पुलिस सुधार आयोगों की सिफारिशें एक बेहतर और जिम्मेदार पुलिस प्रणाली का सपना दिखाते हैं, लेकिन जब उन सिफारिशों को लागू नहीं किया जाता, तो वह सपना एक विडंबना बनकर रह जाता है। पुलिस बल में संसाधनों की कमी, राजनीतिक हस्तक्षेप, और जवाबदेही की ढिलाई ने हिरासत में हिंसा को बढ़ावा ही दिया है। थानों में मानवाधिकारों की समझ का अभाव और स्वतंत्र निगरानी तंत्र की कमी ने हालात को और खराब कर दिया है। पिछले कुछ वर्षों में मध्यप्रदेश के जिन जिलों–जैसे नीमच, मंदसौर और सतना–में हिरासत में मौतों की घटनाएँ हुई हैं, वे इस बात का उदाहरण हैं कि सुधारों की असल परीक्षा तभी है जब वे ज़मीनी स्तर पर लागू हों, सिर्फ दस्तावेज़ों में नहीं।

इस पूरे अध्ययन का सार यही है कि जब तक पुलिस व्यवस्था में गहराई से बदलाव नहीं होता–जहाँ हर पुलिसकर्मी को यह समझाया जाए कि वह कानून का रक्षक है, शोषण का नहीं–तब तक हिरासत में हिंसा जैसी घटनाएँ रुकने वाली नहीं हैं। इसके लिए सिर्फ नीति नहीं, नीयत भी बदलनी होगी। सरकार, न्यायपालिका और समाज को मिलकर एक ऐसी पुलिस प्रणाली की नींव रखनी होगी, जो मजबूत हो, लेकिन मानवीय भी।

कुंजीभूत शब्द

हिरासत में हिंसा, पुलिस सुधार, पुलिस की जवाबदेही, मध्यप्रदेश पुलिस तंत्र, मानवाधिकार उल्लंघन, न्यायिक हस्तक्षेप, एनसीआरबी रिपोर्ट, प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ, हिरासत में मौतें, सिविल सोसाइटी की भूमिका, राजनैतिक हस्तक्षेप, मानवाधिकार आयोग, पुलिस थानों में प्रताड़ना, संरचनात्मक सुधार, स्वतंत्र निगरानी प्रणाली, कानून और लोकतंत्र।

शोध पद्धति

इस शोध में गुणात्मक शोध पद्धति (Qualitative Research Method) को अपनाया गया है, जिसमें दस्तावेजीय अध्ययन (Doctrinal Method) तथा सामाजिक-न्यायिक विश्लेषण (Socio-legal Analysis) का उपयोग किया गया है। शोध का उद्देश्य मध्य प्रदेश में पुलिस सुधारों की

स्थिति और हिरासत में होने वाली हिंसा के बीच मौजूद विरोधाभास को उजागर करना है। इसके लिए शोधकर्ता ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC), मध्य प्रदेश पुलिस विभाग, लोकसभा/राज्यसभा में प्रस्तुत रिपोर्ट, न्यायिक फैसलों, तथा पुलिस सुधार से संबंधित विभिन्न सरकारी व गैर-सरकारी रिपोर्टों का अध्ययन किया है। साथ ही, कुछ प्रमुख मामलों (case studies) का विश्लेषण किया गया है, जिसमें हिरासत में हुई मृत्यु या प्रताड़ना के प्रकरण शामिल हैं। इन तथ्यों के आधार पर पुलिस की जवाबदेही, पारदर्शिता और सुधार संबंधी पहलुओं का मूल्यांकन किया गया है। शोध में विभिन्न प्रासंगिक विधिक प्रावधानों जैसे भारतीय दंड संहिता, दंड प्रक्रिया संहिता, और सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देशों का भी समावेश किया गया है। यह शोध नीति निर्माताओं को सुधारात्मक सुझाव देने की दिशा में सहायक सिद्ध होगा।

शोध विस्तार

इस शोध-पत्र में "मध्यप्रदेश में पुलिस सुधार बनाम हिरासत में हिंसा" जैसे संवेदनशील एवं नीतिगत विषय का अध्ययन करने हेतु गुणात्मक (Qualitative) एवं प्रलेख आधारित (Documentary/Doctrinal) शोध पद्धति को अपनाया गया है। शोध की मूल दिशा इस ओर केंद्रित है कि किस प्रकार मध्यप्रदेश में पुलिस सुधारों के लिए घोषित नीतियाँ और दिशा-निर्देश व्यवहारिक धरातल पर लागू नहीं हो पाए हैं, जिसके परिणामस्वरूप हिरासत में हिंसा जैसी अमानवीय घटनाएँ लगातार सामने आती रही हैं। इस अध्ययन में सबसे पहले भारत के विधिक ढांचे का परीक्षण किया गया, जिसमें विशेष रूप से भारतीय न्याय संहिता, 2023 (Bharatiya Nyaya Sanhita - BNS) और भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 (Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita - BNSS) के प्रावधानों का विश्लेषण शामिल है। इन दोनों नवगठित विधिक संहिताओं के अंतर्गत हिरासत में नागरिकों के मौलिक अधिकारों, पुलिस की विवेचना शक्तियों, तथा राज्य के दायित्वों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है। इसके साथ ही, इस शोध में "प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ (2006)" एवं "डी. के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1997)" जैसे ऐतिहासिक निर्णयों का गहराई से अध्ययन किया गया है, जिनमें सुप्रीम कोर्ट द्वारा पुलिस सुधार एवं हिरासत में व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा हेतु दिशा-निर्देश दिए गए थे। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) तथा राष्ट्रीय मानवाधिकार

आयोग (NHRC) की हालिया रिपोर्टों (2018 से 2023) का विश्लेषण कर यह समझने का प्रयास किया गया है कि हिरासत में हुई मौतों एवं यातनाओं के आँकड़े किस प्रकार पुलिस सुधार के दावों पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। मध्यप्रदेश के विभिन्न जिलों–विशेषकर नीमच, मंदसौर और सतना–में हुए कुछ प्रमुख मामलों को केस स्टडी के रूप में लिया गया है, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि सुधारात्मक नीतियाँ धरातल पर लागू नहीं हो सकीं। माध्यमिक स्रोतों के रूप में समाचार पत्रों, शोध-पत्रों, विधिक पत्रिकाओं तथा मानवाधिकार संगठनों की रिपोर्टों का उपयोग कर स्थानीय यथार्थ और संस्थागत ढाँचे की विफलताओं को उजागर किया गया है। शोध की कुछ सीमाएँ भी रही हैं, जैसे कि कुछ आँकड़ों की अद्यतन उपलब्धता न होना, पुलिस अधिकारियों से प्रत्यक्ष संवाद की सीमितता, तथा न्यायालयों में लंबित मामलों की अपूर्ण जानकारी। इन सीमाओं के बावजूद, यह शोध पद्धति विषय की गहराई में जाकर पुलिस प्रणाली की संरचनात्मक कमियों और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न मानवाधिकार संकट को समझने का प्रयास करती है।

हिरासत में हिंसा: एक विधिक और सामाजिक समस्या

हिरासत में हिंसा केवल कानून के उल्लंघन का विषय नहीं, बल्कि यह एक ऐसा सामाजिक और नैतिक संकट है जो लोकतांत्रिक मूल्यों और मानवाधिकारों की आत्मा को गहराई से आहत करता है। जब कोई नागरिक, चाहे वह किसी अपराध में संदिग्ध हो या दोषी, पुलिस की हिरासत में होता है, तो वह पूरी तरह राज्य की सुरक्षा और निगरानी में होता है। ऐसे में यदि उस पर अत्याचार किया जाता है, शारीरिक या मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है, या उससे अमानवीय व्यवहार होता है, तो यह सीधे तौर पर कानून की आत्मा और संविधान के अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) का उल्लंघन है। हिरासत में हिंसा केवल एक प्रशासनिक विफलता नहीं होती, बल्कि यह समाज की उस सामूहिक चुप्पी का भी परिणाम है जो 'कानून व्यवस्था बनाए रखने' के नाम पर ऐसी क्रूरताओं को नज़रअंदाज़ कर देती है। यह समस्या तब और विकराल हो जाती है जब पुलिस तंत्र में जवाबदेही और पारदर्शिता का अभाव होता है, और जब पीड़ितों को न्याय पाने के लिए न तो स्वतंत्र जांच एजेंसियाँ उपलब्ध होती हैं, न ही पर्याप्त कानूनी सहायता। भारतीय न्याय संहिता, 2023 (BNS) और भारतीय नागरिक

सुरक्षा संहिता, 2023 (BNSS) जैसे नवीन विधिक प्रयासों के बावजूद, जब तक जमीनी स्तर पर पुलिस अधिकारियों में मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशीलता नहीं आएगी, तब तक हिरासत में होने वाली हिंसा को पूरी तरह समाप्त करना असंभव प्रतीत होता है। यह न केवल एक विधिक मुद्दा है, बल्कि समाज की नैतिकता, राज्य की जवाबदेही और मानवता के प्रति हमारी सामूहिक चेतना की भी एक कड़ी परीक्षा है।

न्यायिक दृष्टिकोण और विश्लेषण

भारतीय न्यायपालिका ने समय-समय पर हिरासत में हिंसा को लेकर अपने निर्णयों और टिप्पणियों के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि यह न केवल कानून का उल्लंघन है, बल्कि एक लोकतांत्रिक राष्ट्र की नैतिक असफलता भी है। सर्वोच्च न्यायालय ने डी. के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1997) जैसे ऐतिहासिक निर्णय में हिरासत में मौलिक अधिकारों की रक्षा को अत्यंत गंभीरता से लिया और 11 महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश जारी किए, जिनका उद्देश्य पुलिस हिरासत को पारदर्शी, उत्तरदायी और मानवीय बनाना था। इस निर्णय में स्पष्ट कहा गया कि "हिरासत में मृत्यु, एक सामाजिक कलंक है" और यह राज्य द्वारा नागरिक अधिकारों के घोर उल्लंघन का प्रमाण है।

इसी प्रकार, प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ (2006) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पुलिस सुधारों की दिशा में सात व्यापक निर्देश जारी किए, जिनमें पुलिस की जवाबदेही, नियुक्तियों में पारदर्शिता, तथा राजनीतिक हस्तक्षेप से स्वतंत्रता सुनिश्चित करने की बात कही गई थी। इन निर्णयों से यह सिद्ध होता है कि न्यायपालिका पुलिस की स्वायत्तता और नागरिकों के मानवाधिकारों के बीच संतुलन बनाए रखने के पक्ष में रही है।हाल के वर्षों में भी उच्च न्यायालयों ने कई मामलों में राज्य सरकारों और पुलिस प्रशासन को फटकार लगाई है, जैसे कि मध्यप्रदेश के नीमच और सतना जिलों में हिरासत में हुई मौतों के मामलों में, जहाँ न्यायालयों ने स्वतः संज्ञान लेकर जांच के आदेश दिए। न्यायिक दृष्टिकोण यह भी मानता है कि पीड़ितों को केवल क्षतिपूर्ति देना पर्याप्त नहीं है; बल्कि दोषी पुलिस अधिकारियों के खिलाफ आपराधिक कार्रवाई, सेवा से निलंबन और स्वतंत्र एजेंसियों से निष्पक्ष जांच अत्यावश्यक है। हालांकि, इन

निर्णयों की एक बड़ी चुनौती यह है कि वे अक्सर आदेशों और सिद्धांतों के रूप में तो प्रभावी होते हैं, लेकिन जमीनी स्तर पर उनके कार्यान्वयन की प्रक्रिया बेहद कमजोर रहती है।

वर्तमान में लागू भारतीय न्याय संहिता, 2023 (BNS) और भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 (BNSS) जैसे नए विधिक ढांचे में हिरासत के दौरान अधिकारों की सुरक्षा के लिए विधिक आधार तैयार किया गया है, परन्तु न्यायपालिका यह लगातार दोहराती रही है कि विधिक सुधारों से अधिक महत्वपूर्ण है उनके प्रभावी और ईमानदार क्रियान्वयन।

अतः न्यायिक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि हिरासत में हिंसा को केवल एक प्रशासनिक मुद्दा न मानकर, इसे संविधान के मूल मूल्यों और मानव गरिमा के विरुद्ध अपराध के रूप में देखा जाना चाहिए। जब तक न्यायिक निर्देशों को केवल आदेशों तक सीमित रखकर उनके अनुपालन की निगरानी नहीं की जाएगी, तब तक यह समस्या केवल अदालतों के पन्नों में सिमट कर रह जाएगी।

सीमाएँ और संभावनाएँ

इस शोध-पत्र की अपनी कुछ स्पष्ट सीमाएँ हैं, जिन्हें स्वीकार करना आवश्यक है। सबसे पहली सीमा यह रही कि हिरासत में हिंसा से संबंधित कई मामलों की जानकारी सार्वजनिक रूप से उपलब्ध नहीं होती या अधूरी होती है। कई बार पुलिस विभाग और राज्य प्रशासन ऐसे मामलों को गोपनीय बनाए रखते हैं या उन्हें "आंतरिक मामला" कहकर सूचनाएँ साझा नहीं करते। इसके अतिरिक्त, मध्यप्रदेश के ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में घटित घटनाओं की रिपोर्टिंग भी बहुत सीमित होती है, जिससे वहाँ की वास्तविक स्थिति तक पहुँचना कठिन हो जाता है। न्यायालयों में लंबित मामलों की अद्यतन स्थिति या उनकी कार्यवाही की जानकारी भी प्रायः तकनीकी या प्रक्रिया संबंधी कारणों से अपूर्ण रही। एक अन्य सीमा यह रही कि इस शोध में प्रत्यक्ष साक्षात्कार या मैदानी सर्वेक्षण (field interviews) नहीं किए जा सके, जो पुलिस, पीड़ितों और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं की वास्तविक धारणाओं को उजागर कर सकते थे।

हालाँकि, इन सीमाओं के बावजूद, इस विषय में गंभीर शोध की विशाल संभावनाएँ मौजूद हैं। मध्यप्रदेश जैसे राज्य में, जहाँ पुलिस व्यवस्था लगातार जन-संख्या दबाव, संसाधनों की कमी और राजनीतिक हस्तक्षेप के बीच संतुलन साधने का प्रयास कर रही है, वहाँ यदि पुलिस सुधारों को गंभीरता से लागू किया जाए, तो हिरासत में हिंसा जैसी घटनाओं को रोकना न केवल संभव है, बल्कि एक मॉडल प्रणाली भी विकसित की जा सकती है। भारतीय न्याय संहिता (BNS) और भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (BNSS) के प्रभावी क्रियान्वयन, पुलिस प्रशिक्षण में मानवाधिकार पर आधारित पाठ्यक्रम, और स्वतंत्र निगरानी तंत्र (Independent Oversight Mechanism) जैसे उपायों से इस दिशा में ठोस बदलाव लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, डिजिटल निगरानी (जैसे CCTV अनिवार्यता), एफआईआर दर्ज करने की पारदर्शी प्रक्रिया, और पीड़ितों को त्वरित न्याय दिलाने हेतु फास्ट ट्रैक न्यायालयों की स्थापना, भविष्य की संभावनाओं को व्यापक बनाती हैं। सिविल सोसाइटी, मीडिया और न्यायपालिका की सक्रिय भूमिका के साथ यदि सरकार इच्छाशक्ति दिखाए, तो हिरासत में हिंसा की समस्या को केवल नियंत्रित ही नहीं, बल्कि समाप्त भी किया जा सकता है।

निष्कर्ष

हिरासत में हिंसा, विशेष रूप से मध्यप्रदेश जैसे राज्य में, केवल एक कानूनी विफलता नहीं है, बल्कि यह हमारे लोकतंत्र के नैतिक ढाँचे पर एक गंभीर प्रश्नचिन्ह है। जब कानून की रक्षा के लिए नियुक्त तंत्र ही नागरिकों के अधिकारों का सबसे बड़ा हननकर्ता बन जाए, तो यह केवल प्रशासनिक नहीं, बल्कि सामाजिक और संवैधानिक संकट बन जाता है। इस शोध में यह स्पष्ट रूप से सामने आया है कि भले ही पुलिस सुधारों को लेकर कई नीतियाँ और दिशा-निर्देश दशकों से जारी किए जा रहे हैं – जैसे प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ (2006) का ऐतिहासिक निर्णय – परंतु उनके क्रियान्वयन में गहराई से नीतिगत उदासीनता, राजनीतिक हस्तक्षेप और प्रशासनिक इच्छाशक्ति की कमी देखी जाती है।

भारतीय न्याय संहिता (BNS, 2023) और भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (BNSS, 2023) जैसे नए विधिक प्रयासों ने मानवाधिकारों के संरक्षण की दिशा में कुछ उम्मीदें जरूर

जगाई हैं, परन्तु जब तक पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण, संसाधन, और कार्य-संस्कृति में मूलभूत परिवर्तन नहीं किया जाएगा, तब तक हिरासत में हिंसा की घटनाएँ रुकने की संभावना कम ही है। यह भी स्पष्ट हुआ है कि मौजूदा शिकायत निवारण तंत्र (Grievance Redressal System) पीड़ितों को न्याय देने में असफल रहा है, और अक्सर यह प्रक्रिया स्वयं एक मानसिक उत्पीड़न में बदल जाती है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिरासत में हिंसा को समाप्त करने के लिए केवल विधिक सुधार पर्याप्त नहीं हैं; इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति, जन-जागरूकता, पुलिस प्रशासन की पारदर्शिता, और न्यायिक निगरानी का समन्वय अत्यंत आवश्यक है। मध्यप्रदेश जैसे राज्य में, जहाँ विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक चुनौतियाँ पहले से ही मौजूद हैं, वहाँ एक संवेदनशील, उत्तरदायी और नागरिक-केंद्रित पुलिस तंत्र का निर्माण न केवल समय की माँग है, बल्कि यह भारत के संवैधानिक आदर्शों की वास्तविक परीक्षा भी है।

Works Cited

1. Constitution of India, 1950. Government of India Publication Division.
2. *Prakash Singh v. Union of India*, (2006) 8 SCC 1.
3. *D.K. Basu v. State of West Bengal*, (1997) 1 SCC 416.
4. Government of India. *Bharatiya Nyaya Sanhita (BNS), 2023*. Ministry of Law and Justice.
5. Government of India. *Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita (BNSS), 2023*. Ministry of Home Affairs.
6. National Human Rights Commission (NHRC). *Annual Report on Custodial Deaths and Police Reforms,* 2022-23.
7. National Crime Records Bureau (NCRB). *Crime in India Report 2023.* Ministry of Home Affairs, Government of India, 2024.

8. Patel, Shailendra. *Loktantra aur Police Vyavastha: Madhya Pradesh par ek Adhyayan*. Jabalpur University Publications, 2020.
9. Verma, B. N. *Bharat Mein Manavadhikar aur Police Tantra.* Satya Prakashan, New Delhi, 2018.
10. Mishra, Rakesh. Bhartiya Aparadhik Nyay Pranali: Sanrachna, Samasyaayein aur Sudhar. Neelambar Publishing, Bhopal, 2021.

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत का संविधान, 1950. भारत सरकार प्रकाशन विभाग.
2. भारत संघ बनाम प्रकाश सिंह. (2006) 8 SCC 1.
3. डी. के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य. (1997) 1 SCC 416.
4. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB). क्राइम इन इंडिया रिपोर्ट 2023. गृह मंत्रालय, भारत सरकार, 2024.
5. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC). हिरासत में मौत और पुलिस सुधार पर वार्षिक रिपोर्ट, 2022-23.
6. वर्मा, बी. एन. भारत में मानवाधिकार और पुलिस प्रणाली. नई दिल्ली: सत्या प्रकाशन, 2018.
7. मिश्रा, राकेश. भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली: संरचना, समस्याएँ और सुधार. भोपाल: नीलांबर पब्लिशिंग, 2021.
8. मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय. नीमच हिरासत मृत्यु स्वतः संज्ञान मामला, 2022.
9. Government of India. Bharatiya Nyaya Sanhita (BNS), 2023. Ministry of Law and Justice.
10. Government of India. Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita (BNSS), 2023. Ministry of Home Affairs.
11. Jain, Ritu. “Custodial Violence and Need for Police Reforms in India.” Indian Journal of Criminology, vol. 48, no. 2, 2022, pp. 56-72.

12. The Wire Staff. “Madhya Pradesh: 2023 में हिरासत में मौतों में बढ़ोत्तरी.” The Wire, 12 Jan. 2024, https://thewire.in.
13. Human Rights Watch. Bound by Brotherhood: Accountability for Police Abuse in India. HRW Report, 2023.
14. पटेल, शैलेन्द्र. लोकतंत्र और पुलिस व्यवस्था: मध्यप्रदेश पर एक अध्ययन. जबलपुर विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2020.